साहित्य और घुमक्कड़ी दुनिया

■ डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र

महापंडित राहुल सांकृत्यायन को हम यायावर के रूप में ही अधिक जानते हैं। निश्चय ही वे एक असाधारण पर्यटक थे जिन्होंने घुमक्कड़ी को दुनिया का सबसे बड़ा धर्म माना। देशाटन की प्रवृत्ति के कारण ही क्रमशः उनकी दृष्टि एवं चिन्तन की गतिशीलता का विकास होता गया। अपने लम्बे सफर के दौरान राहुल जी ने विपुल साहित्य-भण्डार की सृष्टि की। विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न राहुल जी के यात्रा-साहित्य एवं दृष्टि पर प्रकाश डालने के लिए उन प्रेरक तत्त्वों की जाँच-पड़ताल कर लेना समीचीन होगा जिनके तहत वे घुमक्कड़ी प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हुए।

राहुल का जीवन बहुत ही संघर्षमय था। उनके पिता गोवर्धन पांडे कनैला के गरीब किसान थे, जिनके पास परिवार-पालन के लिए पर्याप्त पैसा नहीं था। पहले माँ और बाद में पिता के आकस्मिक निधन से उनके बचपन की दुनिया सूनी हो गई। पालन-पोषण ननिहाल में हुआ। नाना-नानी ने उन्हें अच्छे संस्कार दिए फिर भी माँ की स्नेहमयी ममता से वंचित रह ही गए। घर में मन नहीं लगता था। गांव के आस-पास के जंगलों में घूमना इनकी आदत हो गयी थी। ये बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। "कर्मभूमि" में अमरकान्त का निम्नलिखित विचार राहुल के जीवन को भी कहीं न कहीं प्रभावित करता है।

जिन्दगी की वह उम्र, जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाए, तो जिन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। उस वक्त खुराक न पाकर उसकी जिन्दगी खुश्क हो जाती है।"[1]

ग्यारह वर्ष में ही नाना ने इनकी शादी कर दी, इससे वे बहुत नाराज थे। चौदह वर्ष की उम्र में वे काम की तलाश में कलकत्ता भाग गए। घुमक्कड़ी के बीज राहुल में बचपन से ही पड़ गए थे जिसके संबंध में प्रभाकर माचवे का कथन है - " बिल्कुल बचपन की याद में 1897 ई० का भयानक अकाल था, जिसमें भारत के लाखों लोग भूख से तड़पकर मर गए। गरीबी और भूख की वेदना का अनुभव सदा उन्हें अपने से नीचे तबके के लोगों के लिए करुणा और उनकी सेवा के लिए प्रेरित करता रहा। घर में भोजपुरी बोलते थे, मौलवी से उर्दू पढ़ी, ब्राह्मण वंश के संस्कृत के संस्कार थे - भाषाएं सीखने की जिज्ञासा बढ़ती गई। मां की और नानी की धर्म-प्रधान वृत्ति ने उन्हें अनेक धर्मों और दर्शनों की जानकारी पाने की ओर प्रेरित किया और सबसे बड़ी बात तो घर के बातावरण से मन उचाट होकर घुमक्कड़ी का चस्का बहुत छुटपन से ही पड़ गया - वे एक तरह से चिर-पवासी हो गए।"[2]

दर्जा तीसरी की उर्दू किताब में पढ़ा हुआ नबाजिन्दाबजिन्दा का शेर मानो उनके जीवन का आदर्श बन गया।

सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहां।
जिंदगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ।

इस शेर ने राहुल जी को अनवरत यात्रा-पथ पर विराम नहीं लेने दिया। सन् 1917 में हिमालय यात्रा से उनकी लम्बी और बड़ी यात्राएँ शुरू हुईं। ये यात्राएँ ही उनकी शिक्षा के सोपान थे। 1917 में उन्होंने प्रतिज्ञा कर डाली कि जब तक जीवन के पचास वर्ष पूरे नहीं हो जाएंगे, वह आजमगढ़ की सीमा में पैर नहीं रखेंगे। इस प्रकार शुरू हुआ राहुल की यात्राओं का सिलसिला जो कि आजीवन चलता रहा। वे निरंतर घूमते रहे और उनकी लेखनी भी चलती रही। यह उनकी यात्राओं का ही प्रभाव है कि उन्होंने धर्म, दर्शन, इतिहास, विज्ञान, उपन्यास, कहानी और यात्रा-साहित्य आदि सभी की सर्जना की। राहुल जी अपने जीवन में चालीस वर्षों तक यात्रा करते रहे। वे लिखते हैं, "घुमक्कड़ी सदा मिर्च की तरह काफी कड़वी और स्वादिष्ट रहेगी, तभी वह तरुण हृदयों को आकृष्ट कर सकेगी। मुझे घुमक्कड़ी में स्वतः एक प्रकार का आनन्द आता था, आनन्द आता है, अब भी कह सकता हूं, यद्यपि शरीर उसके लिए पहले की तरह सहायक नहीं है। यात्रा ने ही मेरे हाथ में जबर्दस्ती कलम पकड़ा दी और स्वयं ही लेखन शैली बनती चली गई। कलम के दरवाजे को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया, इसलिए मैं इनका बहुत कृतज्ञ हूँ।"[4]

उनकी यात्रा-पुस्तकें इस प्रकार हैं : "मेरी लद्दाख यात्रा" 1926, "लंका" 1926-27, "तिब्बत में सवा वर्ष" 1931, "मेरी यूरोप यात्रा" 1932, "यात्रा के पन्ने" 1934-36, "जापान", 1935, "ईरान" 1935-36, "मेरी तिब्बत यात्रा" 1937, "रूस में पच्चीस मास" 1944-47, "किन्नर देश" 1948, "घुमक्कड़ शास्त्र" 1949, "हिमालय परिचय" 1950, "दार्जिलिंग परिचय" 1950, "कुमायूँ " 1951, "गढ़वाल" 1952, "नेपाल" 1953, "जौनसार-देहरादून" 1955, "एशिया के दुर्गम भूखण्ड 1956, "चीन में क्या देखा" 1960.

डॉ० प्रभाकर माचवे ने राहुल की यात्राओं के आठ उद्देश्य बताए हैं--

(1) नये स्थान के भूगोल, वृक्ष, पशु-पक्षी, जलवायु, नदी-पर्वत का परिचय देना।

(2) उस स्थान या देश का इतिहास प्रस्तुत करना। समाज और राजनीति का ब्यौरेवार क्रम उपस्थित करना।

(3) वहां के निवासियों का वंशशास्त्रीय अध्ययन देना। वे किस उपजाति के हैं ? उनके आचार-विचार क्या हैं? आदि।

(4) वहां के लोगों के धार्मिक मत-विश्वास का अध्ययन प्रस्तुत करना।

(5)वहां की भाषा, साहित्य, लोक संस्कृति तथा कलाओं का ब्यौरा देना।

(6) वहां के पुरातत्व के महत्व की वास्तु शिल्प का इतिहास देना।

(7) पर्यटन की दृष्टि से सैलानी के लिए उपर्युक्त-स्थलों का वर्णन।

(8) उस स्थान की वर्तमान दशा और भविष्य में सुधार के लिए सुझाव देना।[5]

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनके यात्रा-साहित्य में उस युग की सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धड़कन मौजूद है। एक बात सच है कि उनके सारे साहित्य का मूल स्थायी भाव यात्रा है।

यहां संक्षिप्त रूप से राहुल जी की यात्रा के दौरान नैसर्गिक सुषमा का एक उदाहरण प्रस्तुत है-- "चारों तरफ घेरे हुए पहाड़ जिनके पीछे की ओर हिमाच्छादित शिखर वाले पर्वत हैं, बीच में जगह-जगह लम्बे-लम्बे जलाशय सूर्य की भांति कुटिल गति की झेलम, दूर तक सफेदे की दोहरी पंक्तियों के बीच जाने वाली सड़कें, मीलों तक शहर के बाहर भी सेब, बादाम आदि बागों में बने हुए छोटे-छोटे सुन्दर बंगले, हरी घासों से ढके लम्बे-लम्बे क्रीड़ा-क्षेत्र, सुन्दर चिनार वृक्षों की मधुर-शीतल छाया के अन्दर-हरी घास के मखमली फर्शों वाली सुभूमियां देखने में बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं।"[6]

राहुल जी की यायावरी प्रवृत्ति की गूंज उनके सम्पूर्ण साहित्य और जीवन-दर्शन पर विशेष रूप से दिखाई देती है। उनके लिए यह पुकार एक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करती है। "सच्चा घुमक्कड़ धर्म, जाति, देश-काल की सारी सीमाओं से मुक्त होता है, वह सच्चे अर्थों में मानवता के प्रेम का उपासक होता है। यह घुमक्कड़ दुनिया से लेता कम और देता अधिक है।" इसी प्रभाव के कारण उन्होंने जीवन में व्याप्त रूढ़ि-जर्जर संस्कारों की शृंखला को तोड़-फेंककर सनातन धर्म से आगे बढ़ कर आर्य समाज को अपनाया और फिर आर्य समाज को छोड़कर बौद्ध धर्म ग्रहण किया और अन्त में उससे भी मुक्त होकर वे साम्यवादी या कहें विशुद्ध मानवधर्मी हो गए। साम्यवाद के प्रति एक प्रकार का रोमानी आकर्षण आपके मन में 1918-19 से ही हिन्दी-पत्रिकाओं में प्रकाशित रूसी क्रान्ति की खबरों को पढ़कर जागृत हो गया था, किन्तु उसका सैद्धान्तिक ज्ञान और यथार्थ अनुभव 1935 में रूस की यात्रा के बाद हुआ।

सन् 1932 में उन्होंने यूरोप में फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड की यात्राएं कीं। पश्चिम के जीवन ने उन्हें आकर्षित नहीं किया। वे दुबारा यूरोप नहीं गए। तिब्बत के बाद उन्हें अगर किसी देश से प्रेम था तो सोवियत रूस से। सोवियत भूमि पर वे 1935, 1937, 1944 और 1962 में चार बार गए।

इस प्रकार 1907 से 1963 तक राहुल जी बड़ी-बड़ी यात्राएं करते रहे। इस लम्बी यात्रा से गुजरते हुए उनकी भ्रमणशील प्रवृत्ति के अनुसार उनमें क्रमशः ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में नवीन दृष्टियों का विकास होता गया। इतिहास के प्रति उनके दृष्टिकोण के संबंध में रामचंद्र तिवारी लिखते हैं--"हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राहुल जी ने अंग्रेजों द्वारा लिखित इतिहासों पर विश्वास न करके प्रगतिशील भौतिकवादी दृष्टि से इतिहास को देखने की चेष्टा की है। उन्होंने हिन्दी काव्य धारा (अपभ्रंश काव्य) को जन-साहित्य के रूप में देखने का आग्रह किया है। उसे अन्य भारतीय आर्यभाषाओं के साहित्य से सम्बद्ध किया है, और अनेक अज्ञात एवं अल्पज्ञात कवियों को सामने लाकर साहित्य के इतिहास की टूटी हुई कड़ियों को जोड़ा है।"[8]

यात्रा-साहित्य में 'घुमक्कड़ शास्त्र' राहुल के घुमक्कड़ जीवन के अनुभवों का निचोड़ है। इसके द्वारा यात्रा-संबंधी उनकी दृष्टियों का पता लगा सकते हैं।

मनुष्य जाति के इतिहास पर प्रकाश डालें तो यात्रा का संबंध मात्र जीवन की जरूरतों को पूरा करने के लिए था। इस संबंध में स्वयं राहुल का कथन है कि "प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था। खेती, बागवानी तथा घर-द्वार से मुक्त वह आकाश के पक्षियों की भांति पृथ्वी पर सदा विचरण करता था, जाड़े में यदि इस जगह था तो गर्मियों में वहां से दो सौ कोस दूर।"[9]

यात्रा के दौरान मनुष्य को नवीन बातों की जानकारी प्राप्त हुई और उस के जीवन का बौद्धिक विकास हुआ, साथ ही उसके मनन, चिन्तन और विचारों में परिवर्तन आया। प्रकृति के नाना रूपों का दर्शन करने के फलस्वरूप मनुष्य में सौन्दर्यबोध का विकास हुआ। यायावर रचनाकार को यात्रा के दौरान अपना अध्ययन, मनन और चिन्तन अनवरत जारी रखना चाहिए। इन प्रक्रियाओं से गुजरते हुए ही वह यात्रा-साहित्य का सर्जन कर सकता है। साहित्य कोश के अनुसार --"सौन्दर्यबोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जाता है।"[10]

सौन्दर्यबोध का विकास मनुष्य को प्रकृति के नाना रूपों का दर्शन करने के फलस्वरूप ही हुआ और उसका यह बोध क्रमशः विस्तार पाता गया। इसी कड़ी में कवि, लेखक और कलाकार का जन्म हुआ। राहुल जी उपर्युक्त बातें एक उच्चकोटि के घुमक्कड़ में ही देखते हैं। उनका मानना है कि "हमारे महान् कवियों में अश्वघोष तो घुमक्कड़ थे ही। वह साकेत (अयोध्या) में पैदा हुए, पाटलिपुत्र उनका विद्या क्षेत्र रहा और अन्त में उन्होंने पुरुषपुर (पेशावर) को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। कविकुल गुरु कालिदास भी बहुत घूमे हुए थे।"[11]

राहुल जी का विचार है कि उच्चकोटि का रचनाकार बनने के लिए यायावर होना जरूरी है। यह बात सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों के संदर्भ में खरी नहीं उतरती।

नारी-पुरुष के आकर्षण को वे घुमक्कड़ के लिए वर्जित मानते हैं जबकि राहुल जी स्वयं इस बन्धन में बंध गए। हो सकता है कि इस बन्धन के बाद उन्होंने अपने निजी जीवन में कष्ट उठाया हो। इस अनुभव-जन्य ज्ञान के आधार पर वे दूसरे यायावरों को मना करते हैं। प्रेम बन्धन से बचने के लिए मनुष्य जीवन में लज्जा और संकोच को विशेष महत्त्व देते हैं, ये दोनों मानव-जीवन में संतरी की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इस संदर्भ में 'प्रसाद' जी की ये पंक्तियाँ याद आती हैं जो कि हमारी मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण करती हैं -

इतना न चमत्कृत हो बाले, अपने मन का उपकार करो।

मैं एक पकड़ हूँ जो कहती, ठहरो कुछ सोच-विचार करो।[12]

राहुल जी का मत है कि "जिस व्यक्ति को अपनी, अपने देश और समाज की प्रतिष्ठा का ख्याल होता है, उसे लज्जा और संकोच करना ही होता है, उच्चकोटि के घुमक्कड़ कभी ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते जिससे उनके व्यक्तित्व या देश पर लांछन लगे।"[13]

घुमक्कड़ी वृत्ति में कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है; इसलिए राहुल जी आगाह करते हैं कि इस वृत्ति को अपनाने के लिए "न तो माता के आँसू बहने की परवाह करनी चाहिए, न पिता के भय और उदास होने की, न भूल से पत्नी के रोने-धोने की फिक्र करनी चाहिए और न किसी तरुणी को अभागे पति के कलपने की।"[14]

मनुष्य जीवन में पारिवारिक रिश्ते हमारी गहरी संवेदनाओं से जुड़े होते हैं। इनके बन्धन से मुक्त होने पर ही यायावर बनना आसान होता है जोकि व्यावहारिक धरातल पर बहुत ही मुश्किल है।

एक बात यहाँ मैं विशेषरूप से कहना चाहूँगा कि घर-बार छोड़कर बाहर निकल जाने से कोई साहित्यिक यात्री की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए यायावरी आत्मा का साहित्यकार होना जरूरी है जो कि जीवन और जगत् के आन्तरिक स्वरों को पहचान

सके। संसार के बड़े-बड़े यायावर अपनी मनोवृत्ति में साहित्यिक थे। फाहियान, ह्वेनसांग, इब्नबतूता, अलबरूनी, मार्कोपोलो, और बर्नियर आदि प्रसिद्ध घुमक्कड़ हुए हैं। भारतीय यायावरों में देवेन्द्र सत्यार्थी, सत्यनारायण, यशपाल, जगदीश चन्द्र जैन, राजवल्लभ ओझा, गोविन्द दास, भगवतशरण उपाध्याय, अमृतराय, रांगेयराघव, रामवृक्ष बेनीपुरी, काका कालेलकर, हंस कुमार तिवारी, अज्ञेय और विष्णु प्रभाकर आदि का नाम आता है।

यायावरों के संबंध में राहुल जी का गन्तव्य है कि- "एक घुमक्कड़ी को दुनिया से जितना लेना है उससे सौ गुना अधिक देना है। जो इस दृष्टि से घर छोड़ता है, वही सफल और यशस्वी घुमक्कड़ बन सकता है।"[15]

राहुल जी का विचार है कि घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण ही समाज में व्याप्त धार्मिक कूप-मंडूकता के विरोध के प्रचार में बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानंद, चैतन्य महाप्रभु, गुरुनानक, नामदेव, ज्ञानेश्वर, कबीर, तुलसी, स्वामी दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय और स्वामी विवेकानंद आदि लोगों का विशेष योगदान है। इन लोगों ने सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। इस संदर्भ में राहुल जी की मान्यता है कि - "बीसवीं शताब्दी के भारतीय घुमक्कड़ों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं। इतना लिखने से मालूम हो गया होगा कि संसार में यदि कोई अनादि सनातन-धर्म है, तो वह घुमक्कड़-धर्म है। लेकिन संकुचित सम्प्रदाय नहीं है, वह आकाश की तरह महान् है, समुद्र की तरह विशाल है। जिन धर्मों ने अधिक यश और महिमा प्राप्त की है, वह केवल घुमक्कड़-धर्म के कारण। प्रभु ईसा घुमक्कड़ थे जिन्होंने ईसा के संदेश को दुनिया के कोने-कोने में पहुंचाया।"[16] राहुल जी के यात्रा-वर्णन में स्थान विशेष की सामाजिक संस्कृति अपने आन्तरिक और वाह्य रूपों में हमारे सामने आती है।

घुमक्कड़ी धर्म किसी जाति, धर्म, वर्ण, कुल और वर्ग तक सीमित नहीं रहता। इसके लिए स्वावलम्बन और आत्म-सम्मान इन दोनों गुणों का होना आवश्यक है। धर्म और घुमक्कड़ी के सम्बन्ध में राहुल जी का विचार है कि "घुमक्कड़ी व्रत और संकीर्ण साम्प्रदायिकता एक साथ नहीं चल सकते। वह मानव-मानव में संकीर्ण भेदभाव को नहीं पसन्द करता। सभी धर्मों ने मानवता की जो अमूल्य सेवाएं भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में की हैं, उसकी वह कदर करता है; यद्यपि धर्मान्धों को वह क्षमा नहीं कर सकता।"[17]

बात राहुल जी ने यात्रा के संबंध में की है, परन्तु धर्म और सम्प्रदाय के संबंध में उनके विचार काफी प्रासंगिक हो गए हैं। क्योंकि आजकल धर्म का अर्थ साम्प्रदायिकता से लिया जा रहा है। वास्तविक रूप से धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर है। विनोद सुरोलिया के अनुसार - "धर्म मनुष्य के अन्दर की एक ऐसी प्रेरणा, भावना, प्रवृत्ति एवं विधि व्यवस्था है, जो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को ऊँचा उठाती है। धर्म के अभाव में सृष्टि के तत्वों की पहचान नहीं हो सकती।"[18]

धर्म में सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः की भावना निहित है। सामान्यतः आज जिसे धर्म समझा जा रहा है वह धर्म नहीं सम्प्रदाय है। धर्म, व्यक्ति, समाज और राज्य के दैनिक क्रिया-कलापों में एक नैतिक हस्तक्षेप है। धर्म और साम्प्रदायिकता में बुनियादी अन्तर है। धर्म मानवीय मूल्यों को ऊँचाई की ओर ले जाता है; जबकि साम्प्रदायिकता उसे दल-दल में धकेलती है।

जहां धर्म मानव-मानव को जोड़ता है वहीं साम्प्रदायिकता आपस में फूट डालती है। संकीर्ण साम्प्रदायिकता घुमक्कड़ी व्रत के लिए ही खतरनाक नहीं है बल्कि देश एवं समाज के लिए भी है।

राहुल जी यात्रा के दौरान मानवीयता वाले प्रश्न पर बराबर ध्यान देते हैं। उनका मुख्य विषय मानव और मानव-समाज है। उन्होंने व्यक्ति की शक्ति और सत्ता को सर्वोपरि मानकर संघर्ष का संदेश दिया। साधारण मनुष्य की छवि उनके मानस पटल पर सदैव अंकित रहती थी। मुलतान के वर्णन में वे लिखते हैं -"मुलतान सिन्ध और पंजाब की सन्धि पर है। इसलिए यह दोनों से विलक्षण है। यहाँ की पोशाक में सिन्धियों की सादगी झलकती है। देहाती लोग अधिकांश मुसलमान हैं। कहीं-कहीं कुछ हिन्दू खेती करने वाले मिलते हैं। हिन्दू ज्यादातर शहरों में रहते हैं और व्यापार तथा नौकरी करते हैं। भाषा न तो पंजाबी है न सिन्धी।"[19]

राहुल सांकृत्यायन जी की साहित्यिक - दृष्टि बहुत ही व्यापक है। यायावर को गोस्वामी तुलसीदास की तरह स्वान्तः सुखाय में निहित परजन हिताय की भावना से यात्रा करनी चाहिए जिससे वह हजारों और लाखों व्यक्तियों की आँखें बन सके। उसके यात्रा-साहित्य में प्रखर-युगबोध की झलक हो। राहुल जी का विचार है कि "उच्चश्रेणी के घुमक्कड़ के लिए लेखनी का धनी होना बहुत जरूरी है। इसके साथ ही 'घुमक्कड़' को अपनी लेखनी चलाते समय बहुत संयम रखने की आवश्यकता है।"[20]

वास्तव में यात्रा-साहित्य के विभिन्न रूपों का विकास गद्य शैली के विकास के साथ ही सम्भव हो सका है। जिस प्रकार आधुनिक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर पाश्चात्य साहित्य का किसी न किसी रूप में प्रभाव है; उसी प्रकार हिन्दी के आधुनिक यात्रा-साहित्य पर भी उसका ऋण स्वीकार करना चाहिए। अंग्रेजी का प्रसिद्ध निबन्धकार स्टीवेनसन घुमक्कड़ शास्त्री ही था। निबंधशैली की व्यक्तिपरकता, स्वच्छन्दता तथा आत्मीयता आदि गुण यात्रा-साहित्य में पाए जाते हैं। राहुल जी ने लेखनी के संयम की बात की है; इस संबंध में डॉ. रघुवंश का विचार है कि "यात्री सर्वसाधारण की दृष्टि से प्रत्येक बात का विवरण देकर ही नहीं चलता; और यदि विवरण तथा विस्तार देना ही होता है तो वह उन्हें अपने भावावेश में प्रस्तुत करता है अथवा आत्मीयता के वातावरण में उपस्थित करता है, एक बात और भी महत्वपूर्ण है यात्री को अपने वर्णन में संवेदनशील होकर भी निरपेक्ष रहना चाहिए; नहीं तो यात्री यात्रा के स्थान पर प्रधानतः अपने को ही चित्रित करने लगेगा।"[21]

यात्रा-साहित्य की विशेषता इस बात में है कि इसमें स्थान, दृश्य, प्रदेश, गांव, नगर और देश स्वतः मुखरित होते हैं और उनका अपना व्यक्तित्व भी उभरता चलता है। यात्री में कवि का भावाकुल मन, निबन्धकार की मस्ती एवं उसकी वैज्ञानिक बुद्धि और इतिहासकार की ऐतिहासिक दृष्टि आदि बातें होनी चाहिए।

यात्रा से गुजरते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लोक-जीवन, लोकभाषा और लोक साहित्य का गहन अध्ययन किया।

अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। इस संबंध में उनका मानना है कि साहित्य सर्जन जन-सामान्य की भाषा में ही होना चाहिए और यही कारण है कि उन्होंने समाजशास्त्र, विज्ञान, धर्म, दर्शन तथा साहित्य आदि क्षेत्रों के ज्ञान को जनभाषा में सहज एवं सुबोध रूप में रखने का प्रयत्न किया। राहुल जी को छत्तीस भाषाओं की जानकारी थी। इसके पीछे भी उनकी घुमक्कड़ी का अनुभव ही काम करता है। राहुल जी ने 'संस्कीरत कूपजल भाषा बहता नीर' के कबीरी महत्व को यात्रा के दौरान ही जाना और समझा; इसीलिए गूढ़ से गूढ़ विषयों को उन्होंने सहज बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत कर उसे समाजोपयोगी बनाया। जिस समय राहुल जी लिख रहे थे उस समय रानाडे, राधाकृष्णन जैसे दर्शनवेत्ता, जगदीश चन्द्र वसु, सी. वी. रमण जैसे वैज्ञानिक अपनी प्रतिभा का दिग्दर्शन करा रहे थे

लेकिन राहुल जी इन सबसे विशिष्ट थे क्योंकि वे प्रयोगशाला और अध्ययन कक्ष तक सीमित न थे, वे प्रवृत्तिगत घुमक्कड़ थे और इसी संदर्भ में सक्रिय राजनीति, विश्व-भ्रमण तथा प्राध्यापक जैसे उपक्रमों से जुड़ते और अपने अनुभवों को पुष्ट करते रहे।

अन्ततः हम देखते हैं कि राहुल जी ने घुमक्कड़ी को मनुष्य का सर्वोपरि धर्म माना। पंडित शिव शर्मा की धारणा है कि "यायावर अनेक बन सकते हैं; किन्तु उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे यायावरी वृत्ति को अपनाने में तादात्म्य स्थापित कर सकें। राहुल जी जहां होते हैं बिल्कुल घरैया होकर रहते हैं। अपरिचितों के परिवार में भी पारिवारिक सदस्यता हासिल करने वाले ऐसे यायावर 16-18 वीं शती तक चीन, जर्मनी, अमेरिका और इंग्लैण्ड में ही देखे जा सकते थे। बीसवीं शताब्दी के विश्व में ऐसे विरले यायावर राहुल ही हो सकते हैं; द्वितीयोऽनास्ति।"[22]

राहुल जी की यायावरी प्रवृत्ति ने हमें एक बड़ा साहित्य भण्डार दिया। इनकी रचनाओं में जहां एक ओर प्राचीन के प्रति मोह, इतिहास का गौरव आदि है तो दूसरी ओर उनकी अनेक रचनाएं स्थानीय रंगत को लेकर मोहक चित्र एवं नवीन दृष्टि उपस्थित करती हैं। इस सम्बन्ध में संस्कृति विभाग के संयुक्त सचिव और प्रख्यात कवि आलोचक अशोक वाजपेयी के विचार इस प्रकार हैं-- "राहुल जी पारम्परिक किस्म के लेखक नहीं थे। वह भौगोलिक रूप में ही यायावर नहीं थे; बल्कि दृष्टि के भी यायावर थे।"[23]

यायावरी दृष्टि के कारण ही राहुल जी ने धार्मिक आन्दोलनों के मूल में जाकर सर्वहारा धर्म को पकड़ा। इतिहास के पन्नों में असाधारण के स्थान पर साधारण को विशेष महत्व दिया। उनकी यायावरी प्रवृत्ति के कारण उनके रचना-संसार में जनता और मेहनतकश मजदूरों को विशेष स्थान मिला। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोगों को करीब से जाना और समझा। इस कारण उन्होंने अपनी बात को बहुत सरल एवं सहज शैली में बिना किसी लाग-लपेट के लोगों के सामने परोसा। राहुल जी की रचनाएं साधारण पाठकों के लिए भी मनोरंजक एवं बोधगम्य हैं। यात्रा के दौरान इन्होंने देश एवं विदेश की अनेक भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया।

भ्रमणशील होने के कारण राहुल जी समाज में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, पाखण्डों और जड़ संस्कारों से भली-भाँति परिचित हुए और उन्हें उखाड़ फेंकने के विश्वासी रहे हैं। मानव को शोषणमुक्त एवं साम्प्रदायिकता की संकीर्ण भावना से ऊपर उठाकर आपस में सद्भाव, सह-अस्तित्व एवं सर्वधर्म समभाव की स्थापना करना उनका मुख्य उद्देश्य था। समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को हम नकार नहीं सकते।

राहुल सांकृत्यायन के बहुआयामी प्रतिभा के विकास में उनकी यायावरी प्रवृत्ति का ही विशेष महत्व है; जिसके फलस्वरूप उनमें आत्म-निर्भरता, आत्मानुशासन, कठिन परिश्रम, दृढ़ संकल्प, निर्भीकता, स्पष्टवादिता, मानवता में आस्था, निरहंकार प्रवृत्ति, संपत्ति के प्रति निरपेक्ष भाव, मौलिकता, रूढ़िवादिता का विरोध और बौद्धिकता आदि गुणों का विकास हुआ।

उपर्युक्त तमाम खूबियों के बाद विडम्बना इस बात की है कि हम राहुल सांकृत्यायन के जन्मशताब्दी वर्ष मनाने की घोषणा के बाद ही अधिक जान पाए हैं। हिन्दी-साहित्य में भी पठन-पाठन के क्षेत्र में इनकी अच्छी पहचान नहीं बन सकी। जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा है कि घुमक्कड़ी के रूप में ही इन्हें अधिक ख्याति मिली; फिर भी हम इनकी अद्भुत प्रतिभा का लोहा मानते हैं और इनके साहित्यिक योगदान एवं नवीन दृष्टिकोणों को कभी भुला नहीं सकते।

निश्चय ही राहुल जी के विचार हमारी भीतर की बुराइयों को झकझोर कर विचारों को आंदोलित करने में सहायक सिद्ध होंगे और नूतन दृष्टि का निर्माण करेंगे।

पृष्ठ 33 का शेष

मंदिर में गए। मां की आज्ञा थी - 'हां बेटे ! जाओ, उससे शिक्षा ग्रहण करो। इसी कार्य के लिए उसका यहां आना हुआ है।'

लौट कर वे तोतापुरी से बोले - 'मां ने अनुमति दे दी है।' तोतापुरी से उन्होंने वेदान्त का उपदेश प्राप्त किया।

स्वामी श्रीराम कृष्ण के कई शिष्य थे। लेकिन स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्र) एक ऐसे शिष्य थे जिन्होंने देश-विदेश में ख्याति प्राप्त की। स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिमी देशों व भारत में हिन्दू धर्म के दर्शन को प्रतिष्ठा दिलाई। श्रीराम कृष्ण ने नरेन्द्र में अद्भुत शक्ति का संचार किया। उन्होंने एक बार नरेन्द्र को अपने कमरे में बुलाया। तीसरा कोई नहीं था। श्रीराम कृष्ण ने नरेन्द्र को निर्निमेष दृष्टि से देखा और वे समाधि में लीन हो गये। नरेन्द्र को अहसास हुआ कि उसके शरीर में विद्युत् के झटके के समान सूक्ष्म शक्ति प्रवेश करते खड़ी है। वे बाहरी चेतना भूल गए। जब उन की चेतना लौटी तो उन्होंने देखा कि श्रीराम कृष्ण की आंखों से आंसू बह रहे हैं। वे नरेन्द्र से बोले - 'आज मैं तुम्हें सब कुछ देकर फकीर हो गया। इस शक्ति से तू संसार का महान् कल्याण करेगा और तभी तू वापस जा सकेगा।

वर्षों बाद स्वामी विवेकानन्द ने गौरव के उच्चतम शिखरों को प्राप्त किया। उस समय उन्होंने कहा था - 'यदि तन, मन और कर्म से मैंने जो कुछ हासिल किया है - यदि मेरे होठों से एक भी ऐसी बात निकली है जिससे संसार के किसी भी व्यक्ति का कल्याण हुआ है, तो उस में मेरा कोई श्रेय नहीं, सारा का सारा उन्हीं (श्रीराम कृष्ण) का है। पर यदि मेरे मुख से अपवचन निकले हों, मेरे द्वारा घृणा का भाव व्यक्त हुआ हो, तो वह सब मेरा है, उनका कुछ भी नहीं। जो कुछ भी दुर्बलता युक्त है, वह मेरा है और जो कुछ भी जीवन-प्रद शक्तिदायी और पवित्र है, उन सब के पीछे उन्हीं की प्रेरणा है, उन्हीं के शब्द हैं, और वे स्वयं हैं। हां, मेरे मित्रो!अभी संसार के लिए उस व्यक्ति को जानना बाकी है।'

स्वामी श्रीराम कृष्ण की वाणी

स्वामी जी आत्म विश्वास के धनी थे। परमात्मा की असीम भक्ति से ही उन में आत्म विश्वास आया था। उन्होंने कहा था - 'ईश्वर के साकार रूप में दर्शन किये जा सकते हैं, इतना ही नहीं, हम उनका उसी प्रकार स्पर्श कर सकते हैं, जिस प्रकार अपने किसी प्रिय मित्र का।' ईश्वर के प्रति उनकी आस्था इन शब्दों में से झलकती है -

'जो कुछ होता है, वह ईश्वर की इच्छा से होता है, ऐसा दृढ़ विश्वास होने पर व्यक्ति उन के हाथों में केवल यंत्र मात्र हो जाता है और तब वह इस जीवन में ही मुक्त हो जाता है।' उन्होंने गृहस्थियों से कहा था- 'समाज में रहने वाले व्यक्ति को विशेषकर गृहस्थ को, दुष्टों से अपना बचाव करने के लिए फफकारना चाहिए, पर साथ ही यह कोशिश करनी चाहिए कि दुष्टता का बदला दुष्टता से न हो।'